

नियमसार निश्चयचारित्र अधिकार-प्रतिक्रमण अधिकार । [अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्री माधवसेन आचार्यदेव को श्लोक द्वारा नमस्कार करते हैं:] अपने गुरु को नमस्कार करते हैं । पश्चात् प्रतिक्रमण शुरु करेंगे । आहाहा !

नमोऽस्तु ते संयमबोधमूर्तये स्मरेभकुम्भस्थलभेदनाय वै ।

विनेयपङ्केजविकाश-भानवे विराजते माधवसेनसूरये ॥१०८॥

अपने गुरु कैसे हैं ? और उन गुरु को नमस्कार क्यों करते हैं ?-कि वे गुरु संयम और चारित्र से भरपूर हैं । संयम और ज्ञान की मूर्ति,... हैं । आहाहा ! देखो, यह पंचम काल के मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव यह टीका करते हैं । अपने आचार्य को नमस्कार करते हैं । हमारे आचार्य संयम और ज्ञान की मूर्ति हैं । ज्ञानस्वरूपी भगवान पूर्ण, भले छद्मस्थ हैं और संयम की मूर्ति (अर्थात्) अन्तर अतीन्द्रिय संयम में स्थिर, ऐसे ज्ञान और संयम की मूर्ति हैं । आहाहा !

कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले... विषयरूपी वासना, कामरूपी हाथी के कुम्भस्थल को भेदनेवाले हैं । आहाहा ! जिन्हें विषय की वासना का नाश हो गया है । अन्तर अतीन्द्रिय आनन्दपना, मुनिपना । अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद प्रकष्ट-उत्कृष्ट आया है, इससे कामदेव के भाव को छेद डाला है । शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान— हैं । आहाहा ! ये पंचम काल के मुनि ! शिष्यरूपी कमल को विकसित करने में सूर्यसमान... हैं । माधवसेन मुनि । आहाहा ! ये मुनिराज स्वयं अपने गुरु को वन्दन करते हुए गुरु के गुणगान करते हैं । आहाहा ! यह तो हजार वर्ष पहले की बात है । ८००-९०० वर्ष पहले की बात है । ऐसे हे विराजमान (शोभायमान) माधवसेनसूरि ! आपको नमस्कार हो । आहाहा ! ज्ञान की मूर्ति और संयम का पूर्ण स्वरूप । संयम की मूर्ति, अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में संयम की मूर्ति, ऐसे माधवसेन मुनि को शिष्य पद्मप्रभमलधारिदेव नमस्कार करते हैं ।

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से... अब क्या कहते हैं ? जितना व्यवहार

क्रियाकाण्ड है, व्यवहार सामायिक, व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार क्षमापना, व्यवहार प्रायश्चित, व्यवहार प्रतिक्रमण इत्यादि यह सब। **व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष...** व्यवहारचारित्र है, वह राग है, राग है और उसका फल, वह बन्धन है। उससे प्रतिपक्ष। आहाहा! **ऐसा जो शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र...** शुद्ध निश्चयस्वरूप, आनन्दस्वरूप में रमणता। ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान आत्मा, उस ज्ञान और आनन्द में जिसकी रमणता है... आहाहा! वह निश्चयचारित्र है। पंच महाव्रतादि विकल्प, वह चारित्र नहीं, वह व्यवहार है। व्यवहार और व्यवहार के फल से निश्चयचारित्र विरुद्ध है। आहाहा! पंचम काल के मुनि कहते हैं। पंचम काल के अपने गुरु को वन्दन करके स्वयं कहते हैं कि व्यवहारप्रतिक्रमण आदि के काम / राग और उसका फल दुःख, उससे विरुद्ध ऐसा निश्चयचारित्र कि जिसका फल आनन्द है, ऐसे निश्चयचारित्र के भेद को, प्रतिक्रमण को मैं कहूँगा। आहाहा! ऐसी बात है।

निश्चयनयात्मक.... शुद्धनिश्चयनयस्वरूप परम चारित्र... आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान में परम लीनता, अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता। **उसका प्रतिपादन करनेवाला..** उसे कहनेवाला **परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है।** परमार्थ-सत्य प्रतिक्रमण सत्य, जो मोक्ष का निर्विकल्प मार्ग, उसे यहाँ कहा जाता है। आहाहा! अभी तो व्यवहार-व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। यहाँ तो कहे, तेरे व्यवहार सामायिक, व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रत्याख्यान, उसका फल राग और उसका फल दुःख है, उससे विरुद्ध जो निश्चयचारित्र है, उसका फल अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अधिकार मैं कहूँगा। आहाहा!

उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है। वहाँ प्रारम्भ में पंचरत्न का स्वरूप कहते हैं। यह गाथा पंचरत्न है। जैसे प्रवचनसार में अन्तिम पाँच (गाथाओं को) रत्न कहा न? उसी प्रकार यह पंचरत्न है। अन्तर आत्मा का आनन्द का रत्न प्रगट हो, वह रत्न है। यह पाँच रत्न की गाथा कही जाती है। आहाहा! कहाँ गये? शान्तिभाई! यह तुम्हारे धूल के रत्न की बात नहीं है। रत्न का बड़ा व्यापारी है न, हीरा-माणिक का बड़ा व्यापारी है। पच्चीस लोग तो हीरा-माणिक का काम करते हैं। एक-एक को पाँच सौ-सात सौ-हजार का एक महीने का पड़ता है। ऐसे पच्चीस लोग

काम करते हैं। धूल के। सुमेरुमलजी! तुम्हारे पीछे बैठे हैं। शान्तिभाई जवेरी... जवेरी। मुम्बई में। भाई! तुम पहिचानते हो? सुमेरुमलजी! बीस-पच्चीस व्यक्ति तो हीरा को घिसते हैं। इतना उनका काम। एक-एक व्यक्ति को महीने में पाँच सौ, सात सौ, हजार रुपये पड़ते हैं, ऐसे पच्चीस व्यक्ति काम करते हैं। धूल का। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही.. आहाहा! निश्चयचारित्र जो प्रतिक्रमण, उसका स्वरूप मैं कहूँगा। वह व्यवहार प्रतिक्रमण और व्यवहार क्रियाकाण्ड से विपरीत है। विपरीत है। आहाहा! अब यह विपरीत है, विपरीत से, व्यवहार से निश्चय होगा?

मुमुक्षु : किसी काल में नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यहाँ तो व्यवहार से निश्चय तो विरुद्ध है। आहाहा!

वहाँ प्रारम्भ में पंचरत्न का स्वरूप कहते हैं। यह पंचरत्न का अवतरण करने को गाथा कहते हैं।

गाथा-७७-८१

अब पाँच रत्नों का अवतरण किया जाता है:—

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७७॥
 णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७८॥
 णाहं बालो बुद्धो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७९॥
 णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८०॥
 णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८१॥
 नाहं नारक-भावस्तिर्यङ्मानुष-देव-पर्यायः ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥७७॥
 नाहं मार्गणास्थानानि नाहं गुणस्थानानि जीवस्थानानि वा ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥७८॥
 नाहं बालो वृद्धो न चैव तरुणो न कारणं तेषाम् ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥७९॥
 नाहं रागो द्वेषो न चैव मोहो न कारणं तेषाम् ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥८०॥
 नाहं क्रोधो मानो न चैव माया न भवामि लोभोऽहम् ।
 कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥८१॥

अत्र शुद्धात्मनः सकलकर्तृत्वाभावं दर्शयति । बह्वारम्भपरिग्रहाभावादहं तावन्नारकपर्यायो न भवामि । सन्सारिणो जीवस्य बह्वारम्भपरिग्रहत्वं व्यवहारतो भवति अत एव तस्य नारकायुष्क-हेतुभूतनिखिलमोहरागद्वेषा विद्यन्ते, न च मम शुद्धनिश्चयबलेन शुद्धजीवास्तिकायस्य; तिर्य-क्पर्यायप्रायोग्यमायामिश्राशुभकर्माभावात्सदा तिर्यक्पर्यायकर्तृत्वविहीनोऽहं; मनुष्यनाम-कर्मप्रायोग्यद्रव्यभावकर्माभावान्न मे मनुष्यपर्यायः शुद्धनिश्चयतो समस्तीति । निश्चयेन देवनामधेयाधारदेवपर्याययोग्यसुरससुगन्धस्वभावात्मकपुद्गलद्रव्यसम्बन्धाभावान्न मे देवपर्यायः इति ।

चतुर्दशभेदभिन्नानि मार्गणास्थानानि तथाविधभेदविभिन्नानि जीवस्थानानि गुणस्थानानि वा शुद्धनिश्चयनयतः परमभावस्वभावस्य न विद्यन्ते । मनुष्यतिर्यक्पर्यायकायवयःकृतविकार-समुपजनितबालयौवनस्थविरवृद्धावस्थाद्यनेकस्थूलकृशविविधभेदाः शुद्धनिश्चयनयाभिप्रायेण न मे सन्ति । सत्तावबोधपरमचैतन्यसुखानुभूतिनिरतविशिष्टात्मतत्त्वग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनय-बलेन मे सकलमोहरागद्वेषा न विद्यन्ते ।

सहजनिश्चयनयतः सदा निरावरणात्मकस्य शुद्धावबोधरूपस्य सहजचिच्छक्तिमयस्य सहजदृक्स्फूर्तिपरिपूर्णमूर्तेः स्वरूपाविचलस्थितिरूपसहजयथाख्यातचारित्रस्य न मे निखिल-सन्सृतिक्लेशहेतवः क्रोधमानमायालोभाः स्युः ।

अथामीषां विविधविकल्पाकुलानां विभावपर्यायाणां निश्चयतो नाहं कर्ता, न कारयिता वा भवामि, न चानुमन्ता वा कर्तृणां पुद्गलकर्मणामिति ।

नाहं नारकपर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं तिर्यक्पर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं मनुष्यपर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं देवपर्यायं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं चतुर्दशमार्गणास्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये । नाहमेकेन्द्रि-यादिजीवस्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं शरीरगतबालाद्यवस्थानभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं रागादिभेदभावकर्मभेदं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

नाहं भावकर्मात्मककषायचतुष्कं कुर्वे, सहजचिद्विलासात्मकमात्मानमेव सञ्चिन्तये ।

इति पञ्चरत्नाञ्चितोपन्यासप्रपञ्चनसकलविभावपर्यायसन्न्यासविधानमुक्तं भवतीति ।

अब पाँच रत्नों का अवतरण किया जाता है:—

नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं ।

कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥७७॥

मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७८ ॥
 बालक नहीं मैं, वृद्ध नहीं, नहीं युवक तिन कारण नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७९ ॥
 मैं राग नहीं, मैं द्वेष नहीं, नहीं मोह तिन कारण नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥८० ॥
 मैं क्रोध नहीं, मैं मान नहीं, माया नहीं, मैं लोभ नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥८१ ॥

अन्वयार्थः—[अहं] मैं [नारकभावः] नारकपर्याय, [तिर्यङ्मानुषदेवपर्यायः] तिर्यचपर्याय, मनुष्यपर्याय अथवा देवपर्याय, [न] नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका (मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता (-करानेवाला) नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[अहं मार्गणास्थानानि न] मैं मार्गणास्थान नहीं हूँ, [अहं] मैं [गुण-स्थानानि] गुणस्थान [वा] अथवा [जीवस्थानानि] जीवस्थान [न] नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका मैं कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[न अहं बालः वृद्धः] मैं बाल नहीं हूँ, वृद्ध नहीं हूँ, [न च एव तरुणः] तथा तरुण नहीं हूँ; [तेषां कारणं न] उनका (मैं) कारण नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका (मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[न अहं रागः द्वेषः] मैं राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ, [न च एव मोहः] तथा मोह नहीं हूँ; [तेषां कारणं न] उनका (मैं) कारण नहीं हूँ, [कर्ता न हि कारयिता] उनका (मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ; [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

[न अहं क्रोधः मानः] मैं क्रोध नहीं हूँ, मान नहीं हूँ, [न च एव अहं माया] तथा मैं माया नहीं हूँ, [लोभः न भवामि] लोभ नहीं हूँ; [कर्ता न हि कारयिता] उनका

(मैं) कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ, [कर्तृणाम् अनुमंता न एव] कर्ता का अनुमोदक नहीं हूँ ।

टीका:—यहाँ शुद्ध आत्मा को सकल कर्तृत्व का अभाव दर्शाते हैं ।

बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण मैं नारकपर्याय नहीं हूँ । संसारी जीव को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है और इसीलिए उसे नाकर-आयु के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेष होते हैं, परन्तु मुझे—शुद्धनिश्चय के बल से शुद्धजीवास्तिकाय को—वे नहीं हैं । तिर्यचपर्याय के योग्य मायामिश्रित अशुभकर्म का अभाव होने के कारण मैं सदा तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ । मनुष्यनामकर्म के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने के कारण मुझे मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है । 'देव' ऐसे नाम का अधार जो देवपर्याय उसके योग्य सुरस-सुगन्धस्वभाववाले पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण निश्चय से मुझे देवपर्याय नहीं है ।

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान तथा उतने (चौदह) भेदवाले जीवस्थान या गुणस्थान शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे) नहीं हैं ।

मनुष्य और तिर्यचपर्याय की काया के, वयकृत विकार से (-परिवर्तन से) उत्पन्न होनेवाले बाल-युवा-स्थविर-वृद्धावस्थादिरूप अनेक स्थूल-कृश विविध भेद शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से मेरे नहीं हैं ।

सत्ता, अवबोध, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं ।

सहज निश्चयनय से (१) सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप, (३) सहज चित्शक्तिमय, (४) सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति (-जिसकी मूर्ति अर्थात् स्वरूप सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण है ऐसे) और (५) स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यात चारित्रवाले ऐसे मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं ।

अब, इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों से (भेदों से) भरी हुई विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ और पुद्गलकर्मरूप कर्ता का

(-विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म उनका-)अनुमोदक नहीं हूँ (ऐसा वर्णन किया जाता है)।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं तिर्यचपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं देवपर्याय को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया, उसी प्रकार कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।)

इस प्रकार पाँच रत्नों के शोभित कथनविस्तार द्वारा सकल विभावपर्यायों के संन्यास का (-त्याग का) विधान कहा है।

गाथा - ७७-८१ पर प्रवचन

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ ।

कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७७॥

णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७८॥
 णाहं बालो बुद्धो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७९॥
 णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८०॥
 णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं ।
 कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८१॥

हरिगीत । यहाँ नकार से लिया है । निर्वाण शब्द का भाई ने लिया है । सवेरे प्रश्न था न ? निर्वाण और सिद्ध । निर्वाण की व्याख्या-निर्वाण वह सिद्ध है । परन्तु निर्वाण में यह लिया है कि पीड़ा नहीं, दुःख नहीं, राग नहीं, कर्म नहीं । ऐसा लेकर निर्वाण की व्याख्या की है । पश्चात् वह निर्वाण, वह सिद्ध है-ऐसे अस्ति से बात की है । भाई ! निर्वाण में । उसमें से तो एक नया निकला कि १८० गाथा है । ओहोहो ! है १८० ? १८०, यह, परम निर्वाण के योग्य परमतत्त्व के स्वरूप का कथन है । है ? अब यहाँ तो दूसरा कहना है । जरा वह प्रदेश-अप्रदेश है न ? (परमतत्त्व) अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण... क्या कहा ? आत्मा... इन इन्द्रियों से जाने, वह तो अमुक-अमुक प्रदेश से जाने परन्तु केवलज्ञानी तो अखण्ड प्रदेश, अखण्ड में से जाने; इसलिए उन्हें परम निर्वाण को अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण... चन्दुभाई ! एकप्रदेशी लिया है । पंचास्तिकाय में भी एकप्रदेशी (लिया है) । वह दूसरी वस्तु (बात) है, वह तो एकरूप अभेद । यहाँ भी एकप्रदेशी अर्थात् ? - यह पाँच इन्द्रियों में एक-एक खण्ड-खण्ड के प्रदेश से जाने, वह नहीं परन्तु अखण्ड प्रदेश एकसाथ अखण्ड प्रदेश से जाने । इसलिए उसे अखण्ड प्रदेशी एकप्रदेशी कहा है । समझ में आया ? आहाहा !

(परमतत्त्व) अखण्ड-एकप्रदेशी-ज्ञानस्वरूप होने के कारण... पाँच इन्द्रियों से वह जानता नहीं है । पाँच इन्द्रियों का व्यापार नहीं है, ऐसा कहते हैं । नहीं (कहकर) यहाँ तो नकार किया है । आहाहा ! क्योंकि वह परम एकरूप, असंख्यप्रदेशी एकरूप,

एकरूप असंख्यप्रदेश से जानता है। असंख्यप्रदेशी एक प्रदेश किस प्रकार जानता है ? और जो इन्द्रियों का अलग-अलग प्रदेश से जानना है, वह नहीं। समझ में आया इसमें ?

पंचास्तिकाय में ऐसा कहा कि असंख्यप्रदेशी, वह एकप्रदेशी है। वह तो अखण्डता बतायी है। यहाँ कहते हैं, पाँच-पाँच इन्द्रिय के जो प्रदेश हैं, उनसे नहीं जानता। अखण्ड-एक प्रदेश से जानता है। अर्थात् सम्पूर्ण असंख्य प्रदेश एकरूप हैं, उनसे जानता है। आहाहा! इसका नाम यहाँ निर्वाण और परमात्मा और सिद्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? वह इन्द्रियों से नहीं जानता, ऐसे नकार से बात की है। परन्तु वह निर्वाण है और वह सिद्ध है। ऐसी नकार करके, फिर स्वीकार करके सिद्ध किया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं.. हरिगीत आया न 'नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।' यह तो निषेध का आया यह। वह पाँच इन्द्रिय से भगवान जानता नहीं। अखण्ड असंख्य प्रदेश से जानता है। एकप्रदेशी। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! बनियों को समय मिलता नहीं। यह समय.. जेठालालजी! धन्धे के कारण ऐसा निर्णय करने का समय नहीं मिलता। पूरे दिन पाप का समय मिलता है। आहाहा! भले फिर पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये इकट्ठे हों। यह चालीस करोड़ नहीं थे? अपने भाई साहू शान्तिप्रसाद, चालीस करोड़। दूसरे अपने नहीं कहा? इन पोपटभाई का साला। ये पोपटभाई तुम्हारे पीछे बैठे हैं न? इनके साला के पास दो अरब चालीस करोड़। दो अरब चालीस करोड़, दो सौ चालीस करोड़। ये बैठे देखो! सामने। इनका साला। यह उसका बहनोई है। और अभी एक वैष्णव आया था। चिमनभाई का सेठ वहाँ मुम्बई दर्शन करने आया था। पचास करोड़। वैष्णव है। नाम क्या? रामदास आया था। वैष्णव है। घर में महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन हैं। महिलाएँ सब जैन हैं और आदमी सब वैष्णव हैं।

मुमुक्षु : बहुत सुखी लोग हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुखी नहीं, दुःखी हैं। वह तो बेचारा आकर ऐसा कहे। वैष्णव सही न? अर्थात् ऐसा कि ईश्वर कर्ता है या नहीं? बेचारा ऐसे नम्रता से बोलता था। चरण-स्पर्श करने आया था। पचास करोड़ रुपये अभी हैं और चरण-स्पर्श किये, एक हजार रुपये रखे, नारियल रखा और प्रार्थना की—महाराज! मेरे घर पधारना। घर में महिलाएँ सब अपने मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर जैन हैं। सब महिलाओं को बहुत प्रेम है।

इसलिए कहा - महाराज! घर में पधारना। घर में गये थे। वापस पन्द्रह सौ रुपये दिये। नारियल रखा, परन्तु वैष्णव है न? कर्ता (मानता है)। मैंने उससे कहा, भाई! तुम यदि वैष्णव को कर्ता मानते हो तो नरसिंह मेहता ने तो ऐसा कहा है कि 'ज्यां आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' वहाँ उसने ऐसा नहीं कहा 'ज्यां लगी ईश्वर को कर्ता मान्यो नहीं।' यह आत्मतत्त्व है, उसका जहाँ तक अनुभव नहीं किया, उसका ज्ञान नहीं किया और क्रियाकाण्ड में रहा तो चार गति में मर गया। क्या किया.. अभी आया था एक.. समाचार-पत्र में इतना (आया था)। 'शूं कर्युं सेवा अने तीर्थ अने भक्ति कर्या थकी, शूं कर्युं जात्राने दया दान थकी?' उसमें कुछ धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा! कहा, ऐसा कहते हैं न? फिर सुनते थे बेचारे। संस्कार बहुत पड़ गये थे। ईश्वर कर्ता.. कर्ता कौन? यहाँ तो यह कहेंगे। ईश्वर तो कर्ता नहीं, परन्तु हम नारक नहीं। नारकी की गति, वह मेरी नहीं, मैं उसका कर्ता नहीं। आहाहा!

है न? 'नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।' अर्थ में आयेगा। यह तो टीका है। 'कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं।' मेरी मनुष्य गति आदि का कर्ता मैं नहीं हूँ। ईश्वर तो कर्ता नहीं परन्तु यह गति आदि है, उसका मैं कर्ता नहीं। आहाहा! मैं तो एक जाननेवाला-देखनेवाला भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। यह धर्मी की दृष्टि होती है। आहाहा!

मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७८ ॥
 बालक नहीं मैं, वृद्ध नहीं, नहीं युवक तिन कारण नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७९ ॥
 मैं राग नहीं, मैं द्वेष नहीं, नहीं मोह तिन कारण नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥८० ॥
 मैं क्रोध नहीं, मैं मान नहीं, माया नहीं, मैं लोभ नहीं।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥८१ ॥

टीका:—यहाँ शुद्ध आत्मा को... शुद्धस्वरूप जहाँ आत्मा का ज्ञान, भान हुआ। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, अपना शुद्धस्वभाव जहाँ भान में आया, तो

कहते हैं कि शुद्ध आत्मा को सकल कर्तृत्व का अभाव दर्शाते हैं। वह शुद्ध आत्मा किसी का कर्ता नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। यह पंचरत्न कहे हैं।

बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण मैं नारकपर्याय नहीं हूँ। क्या कहते हैं? जेठालालजी! इस नारकी में जो जाते हैं न? नीचे सात नरक हैं। वह बहु आरम्भ और बहु परिग्रह करके मरकर नरक में जाते हैं। है? वह बहु आरम्भ तथा परिग्रह मेरा है ही नहीं और उसका मैं कर्ता हूँ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बहु आरम्भ और परिग्रह नहीं तो कितना...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जरा भी परिग्रह... थोड़ा परिग्रह हो, थोड़ी बात है। यह तो सम्यक्त्वी को समकृती और पाँचवें गुणस्थानवाले को भी परिग्रह परिमाण होता है। भले उसके पास दस हजार हों, तथापि परिमाण लाख का करे, तो भी उसे उसकी मर्यादा है। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा का ज्ञान और दर्शन हुआ है और पूँजी है एक लाख रुपये की, तो भी परिमाण पाँच लाख का करे तो भी वह मर्यादावाला है, उसे परिग्रह की मर्यादा है। आहाहा! और अज्ञानी कुछ भी परिग्रह न रखे, परन्तु परिग्रह का कर्ता और भोक्ता है तो सब परिग्रह का आरम्भ और परिग्रह का कर्ता है। आहाहा! यह क्या कहा?

सम्यक्त्वी आत्मज्ञानी आत्मा जो शुद्धचैतन्य है.. यहाँ कहा न शुद्धचैतन्य! ऐसा जो शुद्ध आत्मा का ज्ञान और भान हुआ, उसे आरम्भ और परिग्रह होता है परन्तु नरक में जाए, ऐसा आरम्भ और परिग्रह नहीं है। अल्प आरम्भ भी होता है। वह तो सातवीं प्रतिमा तक अभी आरम्भ करता है और आहार-पानी भी साथ में बनाता है। उसे परिग्रह की मर्यादा है वहाँ, तो भी वह सम्यक्त्वी और पंचम गुणस्थान में है। आहाहा! अज्ञानी, आत्मा शुद्धचैतन्य वस्तु है, उसकी जिसे खबर नहीं, वह भले परिग्रह का माप करे - परिमाण करे, तथापि अन्दर में तो राग की एकताबुद्धि है तो महा आरम्भ और महापरिग्रह है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : तो भी वह नरक में तो जाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जाता। नरक में नहीं जाता न। कहा न? अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह है। पहले आयुष्य बँध गया हो, बाद में सम्यक्त्व हुआ हो तो नरक में जाता है। वह तो पहले बँध गया, उसके कारण (जाता है)। मिथ्यात्वभाव में आरम्भ और परिग्रह

में तीव्र आसक्ति के कारण नरक का आयुष्य बँध गया हो और बाद में समकित हुआ हो।

जैसे श्रेणिक राजा है। श्रेणिक राजा, पहले नरक का आयुष्य बँध गया, मुनि की आसातना की थी। नग्न मुनि दिगम्बर पर मरा हुआ सर्प डाला। करोड़ों चींटियाँ... घर आकर रानी से कहा, चेलना रानी समकित (थी)। घर में स्त्री थी वह सम्यक्त्वी, स्वयं मिथ्यात्वी-बौद्धमति। उस स्त्री को कहता है कि मैं तेरे गुरु के ऊपर मरा हुआ सर्प डालकर आया हूँ। वह निकाल डाला होगा। प्रभु! अन्नदाता! वे मेरे गुरु ऐसा नहीं करते। आहाहा! चेलना रानी सम्यक्त्वी थी। मेरे गुरु वह परीषह आया, उसे निकाल नहीं डालते। अरे! चल-चल चल, देखने साथ में गये, वहाँ तो आनन्द में, ध्यान में (मुनि) मस्त थे और करोड़ों चींटियाँ। यह चेलना रानी ने... करके सर्प उठाया। लो, स्वामी! नाथ! देखो! यह मरा हुआ सर्प है, करोड़ों चींटियाँ हैं, इन्हें कुछ खबर भी नहीं। यह तो ध्यान में मस्त हैं। सर्प निकाल तो नहीं डाला, परन्तु उस ओर लक्ष्य भी नहीं है। आहाहा!

उस समय वे श्रेणिक राजा... मुनि समझाते हैं, उपदेश देते हैं। उन्हें ऐसा हो गया कि.. ओहोहो! जिनकी ऐसी दशा! जिनके ऊपर मैंने सर्प डाला था, उन्हें खबर भी नहीं। करोड़ों चींटियाँ ऐसे खाती हैं। आहाहा! यह चेलना मेरी स्त्री, उसके ये गुरु! ऐसे गुरु! ओहोहो! गजब बात, भाई! महाराज! प्रभु! मुझे आत्मज्ञान समझाओ। आत्मज्ञान की बात की, प्रभु! तू तो शुद्ध चैतन्यघन है। यह पुण्य और पाप के विकल्प और राग से भिन्न है। आहाहा! ऐसा भान हुआ और किया तो सम्यक्त्व हुआ परन्तु वह (पहले) नरक का आयुष्य बँध गया था। अभी नरक में है। श्रेणिक राजा समकित हैं, तीर्थकरगोत्र बाँधा है, आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर होनेवाले हैं, तो भी अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की (आयुष्य) स्थिति है। आयुष्य तो बँधी थी तैंतीस सागर की, परन्तु समकित प्राप्त हुए तो स्थिति तोड़ डाली। तैंतीस सागर की स्थिति तोड़कर चौरासी हजार वर्ष की रही।

जो लड्डू होता है, उस लड्डू में से घी निकालकर पूरी-बूरी नहीं होती। वह लड्डू खाना ही पड़ता है। इसी प्रकार नरक का आयुष्य बँध गया, वह कम हो, परन्तु अभाव नहीं होता। आहाहा! सातवें नरक का आयुष्य बँध गया था। जहाँ आत्मज्ञान आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा मैं हूँ। मैं तो राग नहीं, विकल्प भी नहीं, आहाहा! शरीर और स्त्री, कुटुम्ब तो मेरे हैं ही नहीं, वे तो परचीज़ हैं। मेरी चीज़ तो आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है,

ऐसा अनुभव हुआ.. चौरासी हजार (वर्ष) की स्थिति रही और तैंतीस सागर की स्थिति तोड़ डाली। अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति, ढाई हजार वर्ष व्यतीत हुए। साढ़े इक्यासी हजार (वर्ष की) स्थिति में से निकलने के बाद तीर्थकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थकर। चारित्र नहीं था, त्याग नहीं था, परन्तु सम्यग्दर्शन-आत्मा का अनुभव (हुआ था)। आहाहा!

यह तीर्थकरगोत्र बाँधा। आगामी चौबीसी में रानी के गर्भ में आयेंगे, तब से इन्द्र आकर उनकी माँ का गर्भ साफ करेंगे, क्योंकि नरक में से निकलकर प्रभु पधारनेवाले हैं। आहाहा! बड़ा व्यक्ति आवे, तब सब साफ करते हैं या नहीं? इसी प्रकार भगवान नरक में से निकलकर माता! तेरे गर्भ में प्रभु आनेवाले हैं। साफ करते हैं। आहाहा! तत्पश्चात् सवा नौ महीने रहते हैं, जन्मते हैं। पहले गर्भ का महोत्सव इन्द्र करते हैं। पश्चात् जन्म का महोत्सव करते हैं। यह सब आत्मज्ञान का प्रताप है। वह राग और पुण्य से भिन्न मेरी चीज़ है, उसका अनुभव वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! बापू! कुछ समझ में आया या नहीं? यह गुजराती भाषा समझते हैं न? वह तो तुम्हारे मुम्बई में जाते होंगे न? आहाहा!

बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण... क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि मुझे आरम्भ और परिग्रह नहीं है, इसलिए नारकपर्याय नहीं है, इसलिए नारकी की पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! इस नरक में गया हुआ जीव भी ऐसा मानता है। मुझे आरम्भ परिग्रह अभी नहीं है और नारकी पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! मेरी पूँजी तो अनन्त आनन्द का सागर प्रभु, अमृत से भरपूर प्रभु वह मैं हूँ। मुझे आरम्भ और परिग्रह नहीं है, इसलिए नारकी की गति मुझे है ही नहीं। आहाहा!

देखो! यह निश्चय प्रतिक्रमण। आहाहा! यह सच्चा प्रतिक्रमण। ऐसे पहाड़े बोले, ऐसे बोले 'मिच्छामि दुक्कडं..' ऐसा तो अनन्त बार किया। परन्तु यह आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञान और आनन्द का सागर, उसकी ओर की दृष्टि करके ज्ञान और आनन्द की पर्याय प्रगट करे, तब वह ऐसा मानता है कि आरम्भ और परिग्रह मुझमें नहीं है। इसलिए वह नारक की गति-पर्याय मेरी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भले पहले आरम्भ और परिग्रह से नरक का आयुष्य बँध गया हो। वहाँ है परन्तु वहाँ ऐसा मानता है कि मैं नारकी नहीं हूँ। आहाहा!

संसारी जीव को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है... संसारी प्राणी को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है। इसीलिए उसे नारक-आयु के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेष होते हैं,... उसे तो मोह-मिथ्यात्व, राग से लाभ माने, पुण्य से लाभ माने, शरीर आदि मेरी क्रिया है—ऐसा माने, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों को मोह-राग-द्वेष होते हैं। आहाहा! परन्तु मुझे—शुद्धनिश्चय के बल से शुद्धजीवास्तिकाय को—वे नहीं हैं। आहाहा! मेरा शुद्धस्वरूप प्रभु, आहाहा! परमानन्द का अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु मैं, ऐसा जो मेरा शुद्ध जीवास्तिकाय। जीवास्तिकाय-ऐसा शब्द लिया है न? अन्य में ऐसा नहीं है। काय लिया है, यह असंख्य प्रदेशी लेना है, इसलिए काय लिया है। आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त आत्मा के असंख्य प्रदेश किसी में देखे ही नहीं। वीतराग जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने आत्मा के असंख्य प्रदेश देखे हैं, इसलिए उसे जीवास्तिकाय कहा है। दूसरे में जीवास्तिकाय, ऐसा शब्द है ही नहीं। आहाहा!

यह कहते हैं कि शुद्धजीवास्तिकाय को—वे... शुद्धनिश्चय के बल से। मेरा परमपवित्र भगवान के आनन्द के बल से, उसके अन्तर के आश्रय के बल से.. आहाहा! शुद्धजीवास्तिकाय... मैं तो शुद्ध जीव का असंख्यप्रदेशी समूह। शुद्ध जीव का असंख्यप्रदेशी समूह, वे उसे आरम्भ और परिग्रह नहीं हैं और नरक की गति नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जिनेश्वर का मार्ग, बापू! वह बाहर से मिले, ऐसा नहीं है। अन्दर जिनस्वरूपी भगवान, जिनस्वरूपी 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही कर्म, इसी वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' वीतराग त्रिलोकनाथ के वचन का मर्म तो यह है, प्रभु! आहाहा! शरीर-बरीर तो मिट्टी-धूल है। आहाहा! मैं नारकी नहीं। मनुष्य को बाद में लेंगे। आहाहा!

तिर्यचपर्याय के योग्य... अब तिर्यच जो पशु होते हैं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पशु, नारकी, मनुष्य, वह घोड़ा, गाय, बैल। उस तिर्यच के योग्य मायामिश्रित अशुभकर्म... कपट से मिश्रित अशुभकर्म का अभाव होने के कारण वह मुझमें है ही नहीं। आहाहा! मायामिश्रित अशुभकर्म, वह मुझमें है ही नहीं। मैं तो शुद्धचिदानन्द आत्मा, उनसे भिन्न हूँ। आहाहा! यह निश्चय-सच्चा प्रतिक्रमण है। आहाहा!

सदा तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ। आहाहा! है? उसमें समुच्चय डाला था। यहाँ तो तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ। ऐसा कहा। तिर्यच की पर्याय के कर्ता से मैं

रहित हूँ। नारकी में समुच्चय डाला था। मुझे मोह, राग, द्वेष नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि तिर्यच में उत्पन्न होने के योग्य मायामिश्रित जो परिणाम है, वह मुझमें नहीं है। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! ऐसा तिर्यचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ। तिर्यच की शरीर की अवस्था के कर्ता से, उस शरीर की तिर्यच अवस्था मेरी, उसका कर्ता मैं, (-ऐसा) नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसकी ज्ञान की पर्याय का कर्ता हूँ, ऐसा अपेक्षा से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? नहीं तो पर्याय का कर्ता पर्याय है। परन्तु मैं आत्मा जीवास्तिकाय शुद्ध चैतन्य हूँ, वह तिर्यच की पर्याय मेरी नहीं है, उसका मैं कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! है? कर्तृत्वविहीन हूँ। उसमें-नरक में भी कर्तृत्वविहीन हूँ, ऐसा लिया है।

मनुष्यनामकर्म के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने के कारण...
आहाहा! मनुष्यपना प्राप्त करने के योग्य जड़कर्म और उसका भावकर्म / विकार का तो मुझे अभाव होने के कारण। आहाहा! मैं शुद्ध जीवास्तिकाय का पिण्ड प्रभु, मुझमें मनुष्य होने के योग्य जो द्रव्यकर्म और भावकर्म, उसका अभाव होने के कारण मुझे मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है। आहाहा! ऐसी मनुष्यपर्याय मुझे नहीं है। आहाहा! यह शरीर नहीं, हों! शरीर तो जड़ है। वह मनुष्यपर्याय नहीं। अन्दर गति की जो योग्यता उदयभाव की-मनुष्य की पर्याय, वह मैं नहीं हूँ। यह तो शरीर है, यह कहीं मनुष्यगति नहीं है। यह तो जड़ है, मिट्टी-परमाणु है। मनुष्यगति के योग्य जो अन्दर उदयभाव, (वह मनुष्यगति है)। आहाहा!

मैं एक चैतन्य ज्ञायकभाव, उसके भाव के अस्तित्व के कारण, मुझमें मनुष्यगति के योग्य भावकर्म-द्रव्यकर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया? प्रतिक्रमण का अधिकार ऐसा है। निश्चयप्रतिक्रमण। उसमें इन गाथाओं को पंचरत्न कहा है। यह गाथा पंचरत्न है, यह धूल का रत्न नहीं है। ऐई! आहाहा! मनुष्यरूपी जो योग्यता की जो उदय की गति, उसके कारणरूप जो विकारभाव और द्रव्यकर्म, वह मैं नहीं हूँ; इसलिए वह मनुष्यगति की पर्याय, वह मैं नहीं हूँ। मैं नहीं परन्तु मैं उसका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं और अनुमोदक नहीं तथा उसका मैं कारण नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें। शुद्धनिश्चय से नहीं है।

‘देव’ ऐसे नाम का अधार जो देवपर्याय, उसके योग्य सुरस-सुगन्धस्वभाववाले

पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण... आहाहा! देव में सुगन्ध और सुरस आदि भाव है, वह मुझमें नहीं है। देवपर्याय मुझमें नहीं है। मैं तो दिव्यशक्ति का धनी, ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु (हूँ), वह देवपर्याय मेरी नहीं है। सुगन्ध और सुरसवाली जो शरीर की अवस्था, (वह मैं नहीं हूँ)। आहाहा! हजार वर्ष में तो उसे आहार की डकार आती है, पन्द्रह दिन में श्वासोच्छ्वास लेता है। ऊँचा-नीचा श्वास पन्द्रह दिन में लेता है और एक हजार वर्ष में आहार का विकल्प आता है। कण्ठ में से अमृत झरता है। वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो आत्मा में से अमृत झरे, वह आत्मा हूँ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वीतरागमार्ग, अन्तर का सूक्ष्म मार्ग कोई अलौकिक है। जगत को सुनने को मिलता नहीं। वह बेचारा क्या करे? आहाहा! एक तो संसार के काम के कारण फुरसत नहीं और घण्टे भर निवृत्त हो तो सुनने को ऐसा मिलता है कि एक घण्टा उसका सब लुट जाता है। पैसे में धर्म मनावे, या दान में या पूजा में अथवा भक्ति में, व्रत में, तप में। आहाहा! अरे रे! जिन्दगी जाती है। कहते हैं कि सच्चा प्रतिक्रमण करना तुझे नहीं आया।

मैं देवपर्याय नहीं हूँ। आहाहा! देव जो मनुष्यपने को चाहते हैं, उस मनुष्यपने की गति के लिए नहीं। देव, मनुष्यपने को चाहते हैं, वे मनुष्यपने की गति के लिए नहीं। मनुष्यपने में जाकर मुझे मेरे आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित संयम हो, उसके लिए मुझे मनुष्यपना मिले, ऐसी भावना करते हैं। आहाहा! अरे रे! देवगति में संयम नहीं, चारित्र नहीं। इस मनुष्यगति में यह मिले, इसकी प्राप्ति के लिए मनुष्यगति की भावना करते हैं। गति की पर्याय के लिए नहीं परन्तु इस भाव के लिए (भावना करते हैं)। आहाहा!

(सुरस-सुगन्धभाववाले पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव) होने के कारण मुझे देवपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है। आहाहा! है? णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ। कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता... इन तीनों में तीन-तीन ले लेना। मनुष्यगति, नरकगति, देवगति और तिर्यचगति, उसका मैं कर्ता भी नहीं, करानेवाला भी नहीं, अनुमोदन करनेवाला नहीं, उसका मैं कारण भी नहीं। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन-सहित का सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! अरे! लोगों को कठिन पड़ता है। निवृत्ति नहीं होती और दुनिया सब करे साथ में। दुनिया करे, साथ में हम कर देते हैं। हम कहाँ नया करते हैं? पूरी दुनिया करती है, (हम भी) साथ में करते हैं। परन्तु सब भटककर मरेंगे, उसमें तुझे भी भटककर मरना है? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। आहाहा! इन चार गति के कारण और चार गति मैंने की नहीं, मैंने करायी नहीं, उसका अनुमोदन मुझे नहीं तथा उस गति का कारण, वह मैं नहीं। आहाहा! मैं तो शुद्ध जीवास्तिकाय के बल से आनन्द और शान्ति का सागर, वह मैं हूँ। आहाहा! और मेरी पर्याय में तो आनन्द और शान्ति आवे, वह मेरा कर्तव्य है। आहाहा! यह गति आदि का मेरा कर्तव्य नहीं है। भाषा आदि का मेरा कर्तव्य नहीं है, वह तो जड़ है। आहाहा! ऐसी बातें!

पश्चात् कहते हैं, **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान...** इसमें नाम नहीं दिए। चौदह भेदवाले मार्गणास्थान हैं। गति, जाति, ज्ञान के भेद, दर्शन के भेद, भव्य-अभव्य—ऐसे जो सब भेद हैं, वे स्थान मुझमें नहीं हैं। आहाहा! **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान...** आत्मा किस-किस अवस्था में है? लौकिक बाहर। उन सब अवस्थाओं की मार्गणा से तो मैं रहित हूँ। आहाहा! मार्गणा अर्थात् कहाँ, किस अवस्था में मैं हूँ? ऐसी जो मार्गणा—गति, जाति, भव्य, अभव्य, ज्ञान की पाँच दशा, अज्ञान की तीन दशा, श्रद्धादशा आदि भेद, इन सब भेदों में मैं नहीं हूँ। आहाहा!

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान... इसमें नाम नहीं दिये। पहले आ गया है। किसमें आया है? ८७ पृष्ठ। पहले आ गये हैं। चौदह हैं न? वे **गति...** गति, उस गति में मैं नहीं हूँ। आहाहा! **इन्द्रिय..** में मैं नहीं हूँ। पाँच इन्द्रियों में मैं नहीं हूँ। **काय..** में मैं नहीं हूँ। औदारिक आदि। **योग...** में मैं नहीं हूँ। मन, वचन, काया के योग। **वेद..** में मैं नहीं हूँ। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद में मैं नहीं हूँ। आहाहा! वे मेरे शुद्धजीवास्तिकाय में ये सब भेद हैं नहीं। **कषाय..** मुझमें नहीं है। पुण्य और पाप का भाव, वह मुझमें नहीं है। मैं तो शुद्ध जीवास्ति, जीव-अस्ति-काय असंख्यप्रदेशी पिण्ड आनन्द का कन्द हूँ। **ज्ञान...** के भेद मुझमें नहीं है। आहाहा! मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल और तीन अज्ञान—ऐसे आठ भेद मुझमें नहीं है। मैं तो एक अखण्ड ज्ञानस्वरूपी प्रभु हूँ। आहाहा!

संयम.. और असंयम वह मुझमें नहीं है। ये सब भेद पर्याय है। आहाहा! **दर्शन..** चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन आदि भेद मुझमें नहीं है। (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन), अवधिदर्शन, केवलदर्शन, ये चार भेद मुझमें नहीं है। वे तो भेद हैं। मैं तो अभेद त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप हूँ। भारी कठिन काम। **लेश्या...** छह लेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, तेज (पीत), पद्म,

शुक्ल । कषायसहित का योग और लेश्या, वह मैं नहीं हूँ । लेश्या और अलेश्या, वह भी मैं नहीं । अलेश्या भी एक पर्याय है, वह भी मैं नहीं हूँ । आहाहा !

इसी प्रकार **भव्यत्व...** अभव्यत्व मैं नहीं हूँ । देखो ! यह भव्यत्व और अभव्यत्व, मोक्ष के योग्य और मोक्ष के अयोग्य, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो त्रिकाली ज्ञायक हूँ । आहाहा ! यह सच्चा प्रतिक्रमण । प्रति—वापिस हटना । परभेद से हटकर अभेद में आना, इसका नाम प्रतिक्रमण है । आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बोल है, भाई ! **भव्यत्व...** अभव्य मैं नहीं । समकित और सासादन, क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम, ये सब भेद मैं नहीं हूँ । आहाहा ! निमित्त तो मैं नहीं, राग तो मैं नहीं, परन्तु भेद मैं नहीं । शुद्धजीवास्तिकाय मेरा स्वरूप त्रिकाल, प्रभु ! जिसकी सत्ता में यह ज्ञात होते हैं, वह जाननेवाला, जाननेवाला वह पूर्ण स्वरूप से है, वह मैं हूँ । यह सब ज्ञात होते हैं, वह तो जाननेवाला जानता है । यह (शरीरादि) तो मिट्टी परवस्तु है । जिसकी सत्ता में ज्ञात होते हैं कि ये हैं, ऐसी सत्ता मेरे ज्ञान की सत्ता में भेद नहीं है । आहाहा ! इसी प्रकार **संज्ञित्व..** असंज्ञीपना । संज्ञी / मनवाला और मनरहित ये दोनों मैं नहीं हूँ । **आहार..** आहार (अनाहार) दोनों मैं नहीं हूँ, वे मुझमें नहीं हैं । है ?

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान तथा उतने (चौदह) भेदवाले जीवस्थान... एकेन्द्रिय (सूक्ष्म-स्थूल), द्वोन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त ऐसे भेद, वह मैं नहीं हूँ । आहाहा ! मैं पंचेन्द्रिय नहीं, मैं एकेन्द्रिय नहीं, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त मैं नहीं हूँ । ऐसा कब सुने ? आहाहा ! पूरे दिन धमाल । मुम्बई वह तो मोहनगरी । आहाहा ! इतने कहे न ? जीवस्थान, वह मैं नहीं हूँ । जीव के चौदह भेद ।

शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को... आहाहा ! जो दृष्टि / सम्यग्दर्शन का विषय है, जो **शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे) भेद नहीं हैं ।** मार्गणा के चौदह भेद नहीं हैं, जीव (स्थान) के भेद नहीं हैं । गुणस्थान के भेद नहीं हैं । आहाहा ! तीन लिये—चौदह मार्गणा, चौदह जीवस्थान, चौदह गुणस्थान । $१४ \times ३ = ४२$ आहाहा । ये मैं नहीं हूँ । मैं तो शुद्धजीवास्तिकाय, परमानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, वह मैं हूँ । वह पर से मैं विमुख होता हूँ और रहता हूँ यह, इसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण है । आहाहा !

ऐसा सूक्ष्म पड़ता है । फिर बातें करते हैं, यह तो सब सोनगढ़ की बातें हैं । वे भाई

कहते थे। कान्तिभाई आये थे न? वे वहाँ गये थे। कौन सा गाँव उनका? कुचामण। वहाँ साधु होगा। राजमल के साथ उन्हें प्रेम है। एक-दूसरे को मिलान खावे, इसलिए वहाँ जाए। उसमें कितनी ही बातें वहाँ साधु को करते होंगे। साधु ने सुना। बहुत बोले नहीं, परन्तु एक आर्यिका बोली, यह तो सब सोनगढ़ की बात है। कहो, सच्ची बात आवे तो यह सोनगढ़ की और बाहर की व्यवहार की बात आवे, वह (हमारी)। वे कहते थे। भाई गये न? कान्तिभाई कहे, मैं वहाँ गया था। राजमल मेरा मित्र है। राजमल को और उनको एक-दूसरे को मिलान खाता है। वहाँ साधु है, और आर्यिका है, इसलिए कितनी ही बातें कीं। पन्द्रह दिन रहा, ऐसा कुछ कहते थे। इसलिए फिर अन्त में आर्यिका ऐसा बोली की यह बात तो सोनगढ़ की है। चौथे गुणस्थान में अनुभूति, यह बात सोनगढ़ की है। चौथे गुणस्थान में अनुभव नहीं होता, अनुभूति तो सातवें गुणस्थान में होती है। कहो, अब... आहाहा!

मुमुक्षु : किसके आधार से कहते होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग है, वह तो सातवें गुणस्थान में होवे न! नीचे होगा ? आहाहा! वह आर्यिका बोली थी, ऐसा कहकर निकाल डाला।

यह पहले से चौथे गुणस्थान को.. यह बात पण्डितजी ने निकाली थी न? ज्ञानसागर में। ज्ञानसागर ने समयसार (की टीका) बनायी है न? चौथे गुणस्थान में। टीका का उद्देश्य चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग का है, ऐसा लिखा है परन्तु टीका में पाँचवें गुणस्थान के ऊपर की भी बात है, ऐसा नीचे फिर डाला है परन्तु इस टीका का उद्देश्य ऐसा लगता है कि चौथे गुणस्थान में समकित शुद्धोपयोग में होता है। ऐसा लिखा है। आहाहा! यह नहीं न? आहाहा!

शुभ और अशुभराग, वह तो अशुद्ध-उपयोग है। उससे हटकर चैतन्यद्रव्य पर आना, वह तो शुद्धउपयोग है। आहाहा! उस शुद्धउपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। अब उसे मानना नहीं तो क्या करना? शुद्ध उपयोग पहले गुणस्थान में नहीं होता, सातवें गुणस्थान में होता है। बस, हो गया। जाओ। परन्तु सातवाँ होवे तो तू फिर ऐसा कहे कि शुद्धोपयोग सातवें गुणस्थान में होता है तो कितना काल रहता है? थोड़ा काल और फिर छठे गुणस्थान में आवे, तो छठा-सातवाँ गुणस्थान तुमको है? पाटनीजी! भले सातवाँ तू कहे, परन्तु सातवें गुणस्थान में रहे कितना काल? यदि लम्बा काल रहे तो श्रेणी माँडकर सर्वज्ञ हो जाए। वह तो अभी है नहीं। शुद्ध उपयोग में से नीचे छठवें गुणस्थान में आ जाए और छठवें में क्षणिक

रहे और फिर सातवें गुणस्थान में आवे, तो सातवाँ नहीं तो छठा भी नहीं, तो गुणस्थान भी नहीं, तो मुनि ही नहीं। सूक्ष्म बात है। बेचारा क्या करे? व्यवहार से लेकर पड़े हैं, और सोनगढ़ का ऐसा निकला, इसलिए लोगों को बेचारों को कठिन पड़ता है। मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा!

चौथे गुणस्थान में समकित में अनुभूति, सम्यग्दर्शन, स्वरूप का आचरण, यह सब चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है। दर्शन, ज्ञान और स्थिरता का अंश सब चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होता है। मोक्ष के मार्ग की शुरुआत वहाँ से है। आहाहा! अब यह माने नहीं, कारण कि उसे है नहीं। सातवाँ होवे तो अभी सातवाँ हमारे कुछ आता नहीं। सातवाँ आता नहीं, तो छठा गुणस्थान भी नहीं। छठा नहीं तो मुनि नहीं। हो गया। आहाहा! समझ में आया?

सातवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग कहे तो सातवें का शुद्धोपयोग तो अल्प काल रहता है, अधिक रहने जाए तो श्रेणी माँडे। वह तो अभी है नहीं। तब शुद्धोपयोग वापस हटकर छठवें (गुणस्थान) में आवे, तब यदि छठवें में आवे और क्षण में रहकर वापस सातवें (गुणस्थान) में आवे तो वह तो तुम्हारे सातवाँ है नहीं, तो छठा नहीं, तो मुनिपना भी नहीं। बाबूभाई! आहाहा! तुम्हारे अनादर के लिए नहीं, प्रभु! यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

भगवान! सबको परमात्मपना हो और परमात्मा की बुद्धि होओ। किसी की विपरीत बुद्धि न रहो, यह तो धर्मी की भावना होती है परन्तु वस्तु का स्वरूप है, तत्प्रमाण आता है; दूसरा क्या आवे? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। ऐसे विविध भाव जो चौदह भेद हैं, वे मुझमें नहीं हैं। फिर विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)